© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Education

अठारहवीं शताब्दी में बनारस जमींदारी के अंतर्गत महाजनी व्यवस्था

डा0 नूतन सिह

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, युवराज दत्त महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी, उत्तर प्रदेश।

शोध सारांश– मध्यकालीन संपूर्ण भारत की अर्थव्यवस्था में महाजनों की भूमिका अति विशिष्ट थी। तत्सामयिक समाज में ये साहूकार बैंकों का कार्य करते थे। दूसरे शब्दों में संचार एवं परिवहन इत्यादि साधनों की कम विकसित अवस्था में सुचारु रूप से आर्थिक व्यवहार करने वाली यह अंतरप्रांतीय संस्था थी। भू–राजस्व के नकद संग्रह, कृषि संबंधी तथा दैनिक आवश्यकताओं एवं व्यापारिक वस्तुओं के क्रय–विक्रय तथा उसके आयात–निर्यात पर दी जाने वाली चुंगी इत्यादि आवश्यकताओं के फलस्वरूप महाजनी प्रणाली का विकास हुआ। 18वीं शदी के अंतिम दशक तक वाराणसी के बैंकिग व्यवसाय से लगभग 200 महाजन एवं सर्राफ जुड़े थे। सामान्यतः ये महाजन वैश्य, अग्रवाल खत्री आदि बनिया वर्ग से सम्बन्धित थे, तथापि अन्य वर्ग के लोग भी इस व्यवसाय में लगे थे। इस्लामी व्यवहार में सूद लेने की प्रथा का निषेध होने के कारण इसमें मुस्लिम नहीं लगे थे। 1733ई.में बनारस में टकसाल की स्थापना से यहां की आर्थिक महत्ता में वृद्धि हुई तथा यहां के व्यवसाय से कुछ और महाजन जुड़े। आलोच्ययुगीन वाराणसी ही नहीं अपितु भारत की संपूर्ण अर्थव्यवस्था में यहां के महाजनों की सक्रिय भूमिका थी। वे व्यापार एवं कृषि में वित्तीय ऋण देने सरकार एवं गैर सरकारी व्यक्तियों को ऋण देने तथा राज्य के राजस्व की वसूली में महत्वपूर्ण योगदान करते थे। कंपनी के साथ वित्तीय व्यवसाय के विकास के साथ–साथ यहां के महाजनों की स्थिति और सुदृढ़ होती गयी। 18वीं शदी के अंतिम दशकों में बंगाल में यूरोपीय पद्वति पर बैंकों पर राज्य का नियंत्रण स्थापित होने के पश्चात यद्यपि यहां की महाजनी व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा तथापि ये महाजन व्यापार व उद्योग के वित्त प्रबंधक के रूप में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाये रख सके। वाराणसी के स्थाई बन्दोबस्त के समय उनमें से कुछ महाजन आमिलों के जमानतदार बने। तत्पश्चात तहसीलदारी से जुड़े गये। स्थाई बन्दोबस्त के बाद के 50 वर्षों में 18वीं शदी के वाणिज्यिक एवं महाजनी संस्थाओं के सदस्यों ने भौमिक संपत्ति भी खरीद ली।

प्रस्तुत लेख मे 18वीं शदी में बनारस मे बैंकिग प्रणाली किस प्रकार संगठित थी,कृषकों तथा व्यापारियों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति कौन करता था, भू–राजस्व की अदायगी में महाजनों की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका थी,इन तथ्यों को जानने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द – सर्राफ, महाजन, बैंकिग, हुंडी व्यवसाय, बीमा व्यवसाय ।

प्रस्तावना– व्यापार एवं वाणिज्य का एक दूसरे से उतना ही घनिष्ठ संबंध है जिस प्रकार कारण एवं परिणाम। अर्थव्यवस्था के विकास के लिए वित्तीय व्यवस्थाओं का सुगम होना अत्यंत आवश्यक है।वर्तमान की इंटरनेट बैंकिग,

ऋण की सुविधाओं इत्यादि की परिकल्पना मध्यकालीन भारत में कर पाना अत्यंत मुश्किल था। मध्यकालीन भारत में बैंकों का कार्य 'महाजन' या 'साहूकार' करते थे। मध्यकालीन संपूर्ण भारत की अर्थव्यवस्था में महाजनों की भूमिका अति विशिष्ट थी। तत्सामयिक समाज में ये साहूकार बैंकों का कार्य करते थे। दूसरे शब्दों में संचार एवं परिवहन इत्यादि साधनों की कम विकसित अवस्था में सुचारु रूप से आर्थिक व्यवहार करने वाली यह अंतरप्रांतीय संस्था थी। भू–राजस्व के नकद संग्रह, कृषि संबंधी तथा दैनिक आवश्यकताओं एवं व्यापारिक वस्तुओं के क्रय–विक्रय तथा उसके आयात–निर्यात पर दी जाने वाली चुंगी इत्यादि आवश्यकताओं के फलस्वरूप महाजनी प्रणाली का विकास हुआ।

समकालीन वाराणसी परिक्षेत्र में लगभग मुगलकालीन महाजनी व्यवस्था ही प्रचलित रही। 18वीं शदी के अंतिम दशक तक वाराणसी के बैंकिग व्यवसाय से लगभग 200 महाजन एवं सर्राफ जुड़े थे।[1] सामान्यतः ये महाजन वैश्य, अग्रवाल खत्री आदि बनिया वर्ग से सम्बन्धित थे, तथापि अन्य वर्ग के लोग भी इस व्यवसाय में लगे थे। इस्लामी व्यवहार में सूद लेने की प्रथा का निषेध होने के कारण इसमें मुस्लिम नहीं लगे थे।[2] 1733 ई.में बनारस में टकसाल की स्थापना से यहां की आर्थिक महत्ता में वृद्धि हुई तथा यहां के व्यवसाय से कुछ और महाजन जुड़े।

वाराणसी के प्रमुख महाजन

वाराणसी के महाजनों में बच्छराज, कश्मीरीमल तथा गोपालदास का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। बच्छराज अवध के नवाब, राजा बनारस तथा बाद में कंपनी के भी महाजन रहे। 1784ई. में वे राजा चेतसिंह के खजांची रहे। अपनी सेवाओं के बदले 1785ई. में उन्हें 'खिलअत' तथा 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई।[3]

कश्मीरीमल ने 18वीं शदी के द्वितीयांश में महाजनी का व्यवसाय आरम्भ किया तथा 1770ई. के पश्चात उन्होंने वाराणसी के महाजनों के बीच अपनी विशेष पहचान बना ली। इनकी कोठी का
नाम 'सुखदेवराय कश्मीरीमल' था। वे अवध के नवाब, राजा बनारस तथा कंपनी के महाजन थे। कश्मीरीमल वारेन हेस्टिंग्ज के विशेष कृपापात्र थे, वे हेस्टिंग्ज को सौगातें भेजा करते थे। कश्मीरीमल की कोठियां भारत के विभिन्न नगरों बंबई, सूरत, पूना, जयपुर, दिल्ली, लखनऊ तथा कलकत्ता में थीं। कश्मीरीमल की कोठी का बच्छराज की कोठी से सहयोगात्मक संबन्ध था।[4]

विवेच्ययुगीन वाराणसी के महाजनों में साहू गोपालदास को भी प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। ये 'भइयाराम गोपालदास' नाम से अपना व्यवसाय चलाते थे। गोपालदास राजा बनारस, अवध के नवाब, वजीर, फर्रूखाबाद के नवाब, मराठों तथा कंपनी सभी के महाजन थे। 18वीं शदी के अंतिम चतुर्थांश तक इस कोठी की लगभग 52 शाखाएं संपूर्ण देश में फैली थीं। ये गाजीपुर, मिर्जापुर, पूना, नागपुर, सूरत, बंबई, मसूलीपट्टम, मद्रास, बड़ौदा, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, पटना, गया, इलाहाबाद, लखनऊ, जयपुर, आगरा एवं दिल्ली में थीं।कंपनी के वित्तीय प्रबन्धों में साहू गोपालदास की महत्वपूर्ण भूमिका थी। फलतः इनकी कोठी का अंग्रेजो पर विशेष प्रभाव रहा।[5]

वाराणसी के अन्य महाजनों में चतुर्भुजदास, ब्रजरमनदास–चमनदास, बल्लभदास–द्वारकादास, अर्जुनजी नाथाजी, कैथाजी, त्रिलोकजी का भी प्रमुख स्थान था।अर्जुनजी नाथाजी सूरत के व्यापारी थे किन्तु 1740ई. तक वाराणसी में

इनकी कोठी पूर्णरूपेण स्थायी हो चुकी थी। इनकी कोठी कंपनी की महाजन थी तथा अन्य कोठियों से इनका संबंध नहीं था।

वाराणसी के महाजनी व्यवसाय पर कुछ वाणिज्यिक जातियों का एकाधिकार था। जो वंश परम्परा से पिता से पुत्र तक चलता रहता था। संपूर्ण देश में फैली अपनी कोठियों की शाखाओं पर उन्होंने अपने गुमाश्तों की नियुक्ति की थी। गुमाश्ते प्रायः उनके पारिवारिक सदस्य या घनिष्ठ संबन्धी होते थे।[6]

महाजनी व्यवसाय में लाभ के मूलाधार इस प्रकार थे–प्रथम –सिक्कों एवं सोने चॉदी की मुद्राओं के व्यापार से लाभ। जिसे वे बेचते या जहॉ से लाते वहीं उॅची दर में परिवर्तित करते तथा उस पर बट्टा लेते। दूसरा–हुंडियों पर कमीशन द्वारा। तीसरे –ऋणों के ब्याज से और चौथे– साधारण एवं वाणिज्यिक वस्तुओं के बीमा द्वारा प्राप्त होता था।[7]

सर्राफ

महाजनों के अंतर्गत सर्राफ भी आते थे जिनका प्रमुख कार्य सिक्कों के वजन एवं शुद्धता की जॉच करना तथा धन परिवर्तित करना था। तत्कालीन राजनीति तथा अर्थव्यवस्था में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

बार्लो की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि मुद्रा व्यवस्था की कमियों तथा संपूर्ण देश के धन के आवागमन की परिपाटी पर महाजनों का वर्चस्व था। प्रशासन की ओर से चाहे जो सिक्के प्रचलित हुये हों, किन्तु महाजनों ने हमेशा 'सनावत' को ही स्वीकार किया तथा प्रामाणिक माना। इसके लिए वे अपने प्रतिनिधि रखते थे जो देश के विभिन्न हिस्सों से सनावत खरीदते तथा जहॉ प्रचलित थे वहॉ लाभ के साथ बेच देते।[8] इस प्रकार की स्थिति में जबकि एक प्रकार के रूपये कृषकों से राजस्व संग्रह के माध्यम होते थे तथा दूसरे प्रकार के रूपयों में राजकीय खजाने में राजस्व अदायगी होती थी,आमिलों के महाजन जो उनका विनिमय करते थे, उनसे स्वयं पूरा कमीशन प्राप्त करते थे।बार्लो के विवरण से हमें यह भी ज्ञात होता है कि– सर्राफ अपने सिक्के का व्यवसाय इस प्रकार से करते थे–''यदि एक रूपया वे महाजन से खरीदते थे तथा तुरंत बाद ही वापस करते थे तो महाजन क्रय एवं विक्रय के बीच बिना किसी लाभ के उसी मूल्य पर सिक्का नहीं लेते थे।'सर्राफ' अक्सर 'सनावत' रूपये में मिलावट करते थे।यह भी ज्ञात होता है कि रैयतों को अपने परगने में प्रचलित खास रूपये में ही मालगुजारी अदा करने के लिए प्रतिबद्ध किया गया जबकि महाजन मनमाने ढंग से मूल्य निर्धारण करते। यदि कृषक सरकार को राजस्व 'सिक्का' रूपये में देते तो महाजन उनसे लगभग सनावत एवं सिक्का के बीच के निश्चित अंतर से वसूल करते। यदि वे सनावत में राजस्व देते तो महाजन सिक्का में कलकत्ता के बिल के लिए कलेक्टरों से उसी प्रकार बट्टा लेते।[9] कालान्तर में 1795ई. के पश्चात सरकार के अधिनियमों से सर्राफों द्वारा धन की शुद्धि एवं परिवर्तन में लाभ प्राप्त करने में कमी आयी।

हुंडी व्यवसाय

महाजनों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था– हुंडी[10] जारी करना। आयात–निर्यात के व्यवसाय हेतु दूरवर्ती क्षेत्रों में धन के प्रेषण की सुविधा इससे जुड़ी थी। जो तत्कालीन परिवहन एवं राजनीतिक दशा की दृष्टि से अत्यंत महंगा एवं जोखिम से भरा था।[11]

आलोच्यकाल में दो प्रकार की हुंडियां प्रचलित थीं–'जोखिमी' व 'गैर जोखिमी'[12]। जोखिमी हुंडी का स्वरूप बीमा की तरह होता था। गैर जोखिमी हुंडी के दो प्रकार थे। 'दर्शनी' एवं 'मुद्दती' या 'मियादी'। दर्शनी को देखकर मॉग के अनुसार तुरंत भुगतान करना होता था जबकि मुद्दती विनिमय पत्र का भुगतान हुंडी में वर्णित एक निश्चित अवधि तक किया जाता था। उस पर भुगतान की धनराशि तथा हुंडी का भुगतान करने वाले का नाम लिखा होता था। हुंडी द्वारा दी जाने वाली धनराशि लोगों की आवश्यकता तथा महाजन के पास संचित धन के अनुसार होती थी।[13]

हुंडी का प्रयोग मुख्यतः राजस्व की वसूली हेतु किया जाता था। इस प्रकार की हुंडियों के दाखिला[14]पर महाजन कमीशन लेते थे, उसे 'भराई' कहा जाता था। कंपनी ने महाजनों को 'मुफस्सिल'[15] के लिए उपयोगी बनाया। 18वीं शदी में उत्तरी भारत में जमींदारी व्यवस्था के विकास के साथ ही सामान्यतया महाजनों ने आमिलों को जमानत देने का व्यवसाय करना आरम्भ किया। वे हुंडियों द्वारा सरकार के राजस्व की अदायगी करते थे। हुंडी पर कमीशन 1%से 2% तक होती थी। हुंडी पर कमीशन जहॉ राजस्व जमा किया जाता,वहॉ से जनपद की दूरी तथा विभिन्न सिक्कों के मूल्य जिसमें राजस्व दिया जाता था, के अनुसार तय होती थी।

राज्य के राजस्व संग्रह के अतिरिक्त हुंडी का प्रयोग आयात–निर्यात व्यवसाय तथा व्यक्तिगत उपयोग के लिए भी था। दूरवर्ती क्षेत्रों से आने वाले तीर्थयात्री धन को अपने पास रखने के जोखिम से बचने के लिए अपने स्थानीय महाजन से यहॉ के सर्राफ के नाम हुंडी लाते थे।सर्राफ बट्टा काटकर उनकी इच्छित धनराशि उन्हें दे देते थे।

ऋणों पर प्राप्त होने वाला ब्याज

तत्कालीन अंग्रेजी एवं फारसी स्रोतों से हमें ज्ञात होता है कि वाराणसी के बड़े महाजन मुगल शासकों, अवध के नवाब, राजा बनारस तथा कंपनी की ऋण द्वारा आर्थिक सहायता करने के साथ–साथ साधारण व्यक्तियों जैसे कृषकों, शिल्पियों एवं निम्न स्तर के व्यवसाइयों, आमिलों, तथा जमींदारों की भी ऋण द्वारा आर्थिक सहायता करते थे।[16]

सूद अर्जित करने की दृष्टि से महाजनी व्यवसाय मात्र सर्राफों तक ही सीमित नहीं था, अपितु भिन्न स्तरों एवं व्यवसायों के व्यक्ति अपने–अपने तरीके से इस व्यवसाय में लगे थे।[17] देशी महाजन बैंकिग एवं व्यवसाय दोनों से ही जुड़े थे, किन्तु वे प्राथमिकता बैंकिग को ही देते थे। देशी महाजन उपभोग की अपेक्षा व्यवसाय एवं व्यापार हेतु वित्तीय सहायता देते थे, जबकि शहरी महाजन व्यापार का अपेक्षा उपभोग के लिए वित्तीय सहायता अधिक देते थे।

बीमा व्यवसाय

महाजनों का एक अन्य महत्वपूर्ण व्यवसाय बीमा का था। 18वीं शदी में ये महाजन जल एवं स्थल मार्ग से परिवहन की जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं का बीमा करते थे।संपन्न महाजनों में से अधिकांश महाजनी के साथ–साथ व्यापार से भी जुड़े रहे,जबकि दूसरी ओर बड़े व्यापारी कुछ महाजनी कोठियों को भी संचालित करते थे।[18] व्यापारियों एवं महाजनों के मध्य बढ़ते धनिष्ठ संबन्धों ने व्यापारियों को इस व्यवसाय के प्रति आकर्षित किया। बैंकिग एवं व्यापार के संयुक्त

व्यवसाय ने व्यापारियों द्वारा पण्य वस्तुओं एवं अन्य सामानों की खरीद हेतु धन परिवर्तन की सुविधा प्रदान की।
संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आलोच्ययुगीन वाराणसी ही नहीं अपितु संपूर्ण भारत की अर्थव्यवस्था में यहां के महाजनों की सक्रिय भूमिका थी। वे व्यापार एवं कृषि में वित्तीय ऋण देने सरकार एवं गैर सरकारी व्यक्तियों को ऋण देने तथा राज्य के राजस्व की वसूली में महत्वपूर्ण योगदान करते थे। कंपनी के साथ वित्तीय व्यवसाय के विकास के साथ–साथ यहां के महाजनों की स्थिति और सुदृढ़ होती गयी। 18वीं शदी के अंतिम दशकों में बंगाल में यूरोपीय पद्वति पर बैंकों पर राज्य का नियंत्रण स्थापित होने के पश्चात यद्यपि यहां की महाजनी व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा तथापि ये महाजन व्यापार व उद्योग के वित्त प्रबंधक के रूप में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाये रख सके। वाराणसी के स्थाई बन्दोबस्त के समय उनमें से कुछ महाजन आमिलों के जमानतदार बने। तत्पश्चात तहसीलदारी से जुड़े गये। स्थाई बन्दोबस्त के बाद के 50 वर्षों में 18वीं शदी के वाणिज्यिक एवं महाजनी संस्थाओं के सदस्यों ने भौमिक संपत्ति भी खरीद ली।

संदर्भ सूची

1. पी.आर.ओ.30/11/213 ओरिजिनल इन लार्ज पेपर फोलियो ऐण्ड ट्रांसलेशन, पृष्ठ.26–37; के.पी. मिश्रा,बनारस इन ट्रांजीशन,दिल्ली,1975,पृष्ठ–168–200.
2. एच.आर.नेविल, बनारसः ए गजेटियर वाल्यूम 26 ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ दि यूनाइटेड प्राविन्सेज ऑफ आगरा ऐण्ड अवध,1909,पृष्ठ–119.
3. कैलेन्डर ऑफ पर्शियन करेसपांडेंस,भाग–6,7,नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया दिल्ली, 1949–59, द्वारा प्रकाशित; मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास,वाराणसी,1985,परिशिष्ट–3, पृष्ठ–410, महाजनों की सूची; नूतन सिंह,18वीं शताब्दी में वाराणसी परिक्षेत्र की समाज और अर्थव्यवस्था,शोध–निबंध,पृष्ठ–249–259.
4. कैलेन्डर ऑफ पर्शियन करेसपांडेंस, भाग– 5,7 पत्र संख्या–337,834,1464,1980.
5. गोपालदास के वंशजों में अनुश्रुति है कि उनके पूर्वज 17वीं शदी में अमरोहा से आकर चुनार में बस गये तथा बनारस में 'कल्याणदास चिंतामणि' नाम से अपनी कोठी स्थापित की। भइयाराम राजा चेतसिंह के प्रमुख सलाहकार

बन गये तथा कुछ समय तक दीवान भी रहे, किन्तु बाद में कंपनी के साथ धनिष्ठ आर्थिक संबन्धों के कारण गोपालदास की कोठी से चेतसिंह के संबन्ध अच्छे नहीं रहें।
—मोतीचन्द्र, वही, पृष्ठ— 316.

6. डंकन टू गर्वनर जनरल इन कौंसिल,26 सितम्बर 1790,बंगाल रेवेन्यू कन्सल्टेशन्स,8 अक्तूबर1790,रनेज—52,19 पृष्ठ—681—88;बी.ए.सल्वाटोर, इंडियन हिस्टारिकल रिकार्ड कमीशन प्रोसीडिंग्स, भाग—30,खंड—2,पृष्ठ—155,327,328; सी.एन.कुक,दि राइज,प्रोग्रेस ऐण्ड प्रजेन्ट कंडीशन आफ बैंकिग इन इंडिया,कलकत्ता,1816,पृष्ठ—12,13.
7. आर.जेनकिन्स रिपोर्ट आन दि टेरिटरीज ऑफ राजा नागपुर,1827,पृष्ठ—44; इरफान हबीब, बैंकिग इन मुगल इंडिया,बंबई,1963,पृष्ठ—3—7.
8. 'सनावत' को कुछ समय तक 'चलनी' (प्रचलन) या 'पेथ' कहा जाता था। शाहआलम के शासनकाल में यह गौहरशाही नाम से जाना गया। गौहरशाह शाहआलम का ही आरम्भिक नाम था। उसी काल में उसे सिक्का कहा गया। नये सिक्के के ढलने के बाद उसे सनावत कहा जाने लगा। —फोक टू गर्वनर जनरल इन कौंसिल,16नवम्बर 1775, यूरोपियन मानुस्क्रिप्ट इन दि इंडिया आफिस लाइब्रेरी,3,पृष्ठ—9
9. बार्लो टू गर्वनर जनरल इन कौंसिल, 24 अगस्त,1787,बंगाल पब्लिक कंसल्टेशन्स, 26दिसम्बर1787,रनेज—3—30,पृष्ठ—965—66.
10. यह एक प्रकार का विनिमय पत्र था जो मॉग के अनुसार या जरूरत के समय अदायगी हेतु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को दिया जाता था। इसके द्वारा धन का प्रेषण किया जाता था। —एल.सी जैन, इंडिजीनियस बैंकिग इन इंडिया,लंदन, पृष्ठ—8.
11. डी.आर.गाडगिल,ओरिजिन्स ऑफ दि मॉडर्न इंडिया बिजनेस क्लास,ए अंतरिम रिपोर्ट,पृष्ठ— 33; सी.एन. कुक,वही,पृष्ठ—83—88.
12. आर. के. मुखर्जी,दि इकोनमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,पृष्ठ—149—217.
13. दर्शनी हुंडी के लिए देखें—एल.सी.जैन,वही,पृष्ठ—73; इरफान हबीब,वही,पृष्ठ—78—80. चित्र के लिए दृष्टव्य है—एच. सिन्हा, अर्ली यूरोपियन बैंकिंग इन इंडिया,पृष्ठ—32—34.
14. हंडी दाखिला अर्थात किश्तों में भू—राजस्व अदायगी।
15. कृषक द्वारा जमींदार को तथा जमींदार द्वारा सरकार को अदा किया जाने वाला भू—राजस्व जिसे सदरजमा या राज्य का राजस्व भी कहते थे।
16. विस्तृत विवरण के लिए दृष्टव्य है—रियाज—उस—सलातीन,पृष्ठ—269.उद्धृत—जे.एच.लिटिल,दि हाउस ऑफ जगत सेठ,बंगालःपास्ट ऐंड प्रजेन्ट,भाग—20,पृष्ठ—130.
17. कृषकों को बुवाई के समय बीज देने तथा फसल पकने पर उसे सूद सहित वापस लेने की प्रक्रिया 'सवाई' या 'डेढ़ी' कहलाती थी। —इंडियन सेंट्रल बैंकिग इन्क्वायरी कमेंटी रिपोर्ट, भाग—1,दृष्टव्य—एल. सी.जैन,पृष्ठ—28.

18. वाराणसी के महाजनों में विशेष रूप से गोसाइयों के नाम व्यापारियों के साथ महाजनों की सूची में प्राप्त होते हैं।–बी.एस.कॉन,स्ट्रक्चरल चेन्ज इन इंडियन रूरल सोसायटी, पृष्ठ–74, 75;दृष्टव्य–आर.इ.फ्रैकेनबर्ग द्वारा संपादित पुस्तक'लैंड कंट्रोल ऐंड सोशल स्ट्रक्चर इन इंडियन हिस्ट्री',लंदन,1969